ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI TITLED No. :UPBIL04292,
RNI REG. No.: UPBIL/2014/66218, SOCI.REG. No.: 561/2013-14 Vol.-5, No.-II, PP-261-263,YEAR- DEC.2016

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का भाषा–बोध

❑ डॉ0 वंदना पाण्डेय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की असाधारण प्रतिभा एवं साहित्य साधना के केन्द्र में उनकी गहन सांस्कृतिक एवं प्रगतिशील सामाजिक चेतना है। आपका स्थान साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में पाया जाता है। आपने स्वर्णिम अतीत के आलोक में प्रगतिगामी वर्तमान साहित्य को परखने का अदभुत प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल को अपने प्रखर शोधपूर्ण अध्ययन से प्रकाशित किया तथा साहित्य में श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की अनिवार्यताओं को स्थापित करते हुए कबीर को हिन्दी के महान संत कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया ।

आचार्य द्विवेदी का हिन्दी निबन्ध लेखकों में निर्विवादतः शीर्षस्थ स्थान है। आपके निबन्धों में प्राचीन साहित्य के गहन अध्ययन की झलक तो सर्वत्र विद्यमान है ही, उनके स्वभाव की सरसता एवं विनोदप्रियता ने उनकी भाषा में एक ऐसा आस्वाद पैदा कर दिया है जो उनके अनुवर्ती साहित्यकारों के मध्य प्रायः नहीं है। यहाँ हम आचार्य द्विवेदी के भाषा संबंधी दृष्टिकोण को जाचने–परखने का प्रयास करेंगे। आचार्य द्विवेदी ऐसे महान् साहित्यकारों में अग्रणी हैं जो अपनी भाषा–शैली से अपने व्यक्तित्व को जोड़े रहे हैं। लेखन से व्यक्तित्त्व को जोड़ना आसान नहीं है। जब लेखक किसी विषय को लेखबद्ध करने को अग्रसर होता है तब उसके अन्तर्मन में व्यक्तिगत बेचौनी का प्रादुर्भाव होता है। लेखक की यह बेचौनी ही उसके विषय की परतों के नीचे की गहराईयों में उतारती चली जाती है और लेखक तदनुकूल भाषा की संरचना का रूप स्वयमेव ही निर्मित करता चला जाता है। इस तरह का मंथन कोई साहित्यिक क्षमता रखने वाला साहित्यकार ही कर सकता है। आचार्य द्विवेदी मूलत सर्जनात्मक साहित्य के रचनाकार है ऐसा ही नहीं अपितु उनकी लेखनी में सर्जनात्मक साहित्य एवं आलोचनात्मक साहित्य का अद्भुत सामजस्य है।

आचार्य द्विवेदी ने बाल्यावस्था में आपने घर पर ही संस्कृत भाषा सीखना आरंभ कर दिया। अतः द्विवेदी जी के बचपन में पड़े गहन संस्कार अंत तक बने रहे। आपने भारतीय संस्कृति का गूढ गहन अध्ययन किया था जिसका प्रतिफलन उनकी लेखनी में देखा जा सकता है। वे संस्कृत को भारत की सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक प्राचीन भाषा स्वीकार कर उसे ही एक मात्र अपना आश्रय मानते हैं– "हिमालय से सेतुबंध तक सारे भारत वर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा कुछ सौ वर्ष पहले तक एक ही रही है। यह भाषा संस्कृत थी। भारतवर्ष का जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ उत्तम है, जो कुछ रक्षणीय है वह इस भाषा के भण्डार में सिंचित किया है। जितनी दूरी तक इतिहास हमें ठेलकर पीछे ले जा सकता है उतनी दूर तक इस भाषा के सिवा हमारा और कोई सहारा नहीं है।"[1]

द्विवेदी जी का मानना है कि लोगों ने समयानुसार अपने को अपने अतीत से इतना दूर कर लिया कि पुराने जमाने का कोई पूर्वज उन्हें पहचान नहीं सकता। इस सबके पीछे वे भाषा, संस्कृति, शिक्षा–दीक्षा एवं विचार–वितर्क को ही जिम्मेदार ठहराते हैं और अपने जैसे मनीषी–विद्वानों और भारतीय लोगों को अपनी परंपरा एवं संस्कृति के प्रति ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं– "यह हमारी सबसे बड़ी पराजय है। राजनीतिक सत्ता के छिन जाने से हम उतने नतमस्तक नहीं हैं जितने कि अपने विचार की, तर्क की, दर्शन की अध्यात्म की और सर्वस्व की भाषा छिन जाने से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हम अपनी ही विद्या को अपनी बोली में न कह सकने के उपहासास्पद

❑ एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, गोकुलदास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (उ0प्र0) भारत

अपराधी है। यह लज्जा हमारी जातीय है।"[2]

भारतीय आर्यभाषा परिवार की सभी भाषाओं का संबंध संस्कृत से है। सभी बोलियों एवं भाषाओं ने संस्कृत से अपने को विकसित किया है, परन्तु आज संस्कृत की गरिमा एवं महिमा को अपने ही देशवासी नहीं समझते तो विदेशी लोगों से कैसी अपेक्षा रखी जा सकती है। आचार्य द्विवेदी का संस्कृत भाषा के प्रति कितना अगाध प्रेम एवं विश्वास था, उनके शब्दों में इसे बखूबी देखा जा सकता है– "हम हजार संस्कृ त की परंपरा से च्युत हो गये हों और उस भाषा तथा उसके विशाल साहित्य को भूल गये हों, पर वह हमसे दूर नहीं हो सकती।"[3]

आज हिन्दी भाषा का जो रूप हमारे समक्ष है वह संस्कृत से ही विकसित हुआ है जिसमें परिनिष्ठता, परिष्कृतता एवं प्रांजलता विद्यमान है। संस्कृत के बाद भारतीय आर्यभाषाओं में हिन्दी ने जो स्थान प्राप्त किया वैसा अन्यत्र भाषा के साथ नहीं हुआ। यद्यपि द्विवेदी जी समस्त भारतीय आर्यभाषाओं को राष्ट्र–सम्पत्ति मानते हैं किन्तु समूचे राष्ट्र की समृद्धि और प्रगति के लिए हिन्दी को ही प्रश्रय देते दृ ष्टिगत होते हैं "सारे राज्यों और देश के पारस्परिक संबंध के लिये हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाय। ऐसा करने से ही देश में हर अर्थों से लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था कायम होगी।"[4]

उपर्युक्त कथन से बात साफ हो जाती है कि जिस तरह भारतीय जन्मभूमि का निवासी जिस भाषिक क्षेत्र का होगा उस भाषा को सर्वप्रथम ग्रहण करेगा और उसी भाषा को शीघ्र ह्रदयंगम कर लेगा वहीं इसके विपरीत यदि उसे विदेशी भाषा उसी परिवेश में रहकर सिखाई जाये तो वह उसे उतनी जल्दी ग्राह्य नहीं कर सकेगा जितनी अपनी मातृभाषा को । अतः व्यक्ति का स्वतंत्र चिंतन–मनन जिस देशी या मातृभाषा में हो सकेगा वैसा किसी अन्य विदेशी भाषा से नहीं क्योंकि भाषा परंपरा से अर्जित वस्तु है, वह भौगोलिक परिवेश से भी संबद्ध होती है। विदेशी भाषा की तुलना में देशी भाषा के लोगों से निरंतर उसी भाषा में व्यवहार एवं आदान–प्रदान होता है। अतः आचार्य द्विवेदी जी का कथन उचित है कि मनुष्य का स्वतंत्र चिंतन उसकी अपनी देशी भाषा में ही होगा अन्य भाषा से नहीं।इघर अब भारतीय लोगों में अपने देश के प्रति गौरवान्वित होने की चेतना जाग्रत हुई है और हमारे देशवासी विदेशों में रहकर अपनी भारतीय भाषाओं को जिनमें हिन्दी प्रमुख है को लेकर नये तेज के साथ आगे बढ़ रहे हैं और द्विवेदी जी हिन्दी को विश्वशांति और प्रेम के लिये उसे विश्वमंच पर लाने का अपूर्व स्वप्न देखते हैं कि हिन्दी जल्दी ही विश्व रंगमंच पर नव्य–प्रकाश लेकर आलोकित होगी– "आज देश स्वाधीन है निःसंदेह ऐसा समय आ रहा है जब उनके (भारतीयों के) साथ गई हुई भाषाएँ जिनमें हिन्दी प्रमुख है. नवीन तेज लेकर संसार के रंगमंच पर उतरेगी। इनमें छल–छदम का स्वर नहीं होगा. दूसरों को हीन बताने की तिकड़म नहीं होगी, फूट डालने की नीति नहीं होगी। इसमें निःसंदेह शांति और सौमनस्य की सुगंधि होगी और मनुष्य मात्र के प्रति सौहार्द का स्वर प्रधान होगा..... जो लोग अब भी उसकी शक्ति में विश्वास नहीं करते वे शीघ्र ही समझ जायेंगे कि यह कोरी कल्पना नहीं है। हिन्दी विश्व की सबसे शक्तिशाली तृतीय भाषा के रूप में उदित हो रही है।"[5]

हिन्दी भाषा अपने पथ पर निरंतर प्रगतिगामी रही है। उसने अपने रूप आकार एवं संरचना में पर्याप्त परिवर्तन एवं सुधार किये हैं और उसमें और भी सुधार समय–समय पर होते रहते हैं। लेकिन एक नये सिरे से पुनः भाषा का गठन होना चाहिये। ऐसी अपेक्षा हिन्दी के प्रति नहीं होनी चाहिये। हिन्दी का आज जो रूप हमें दृष्टिगत होता है वह परिनिष्ठित (जंदकंतक) रूप है। इसे और भी विकसित किया जाये यह तो उचित है परंतु इसके इस रूप को फिर से नया रूप दिया जाये। आचार्य द्विवेदी जी इसके पक्ष में नहीं हैं "मै फिर कहता हूँ कि इसके परिनिष्ठित रूप में भी मेरे मत से कहीं शैथिल्य है और उसका सुधार होना चाहिये, परंतु परिनिष्ठित रूप है ही नहीं यह बिलकुल गलत बात है।"[6]

आचार्य द्विवेदी हिन्दी में परिनिष्ठतता लाने के लिये संस्कृत की तत्सम शब्दावली को प्रश्रय देकर हिन्दी में सम्मिलित करने की बात कहते हैं। उनका मानना

है कि हिन्दी का शैथिल्य तब तक नहीं दूर हो सकता जब तक कि उसमें संस्कृत की शब्दावली को सम्मिलित नहीं किया जाता और तभी हिन्दी पूर्णतः परिनिष्ठित भाषा बन सकेगी। ''कहना न होगा कि संस्कृत का सहारा हमारी भाषा के परिनिष्ठित रूप के लिये कितना महत्वपूर्ण रहा है।''[7]

हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिये द्विवेदी जी हिन्दी भाषाविदों को सचेत करते हैं और उन्हें इस बात का दोषी ठहराते हैं कि आप जैसे लोगों ने यदि हिन्दी के प्रति सम्मान नहीं रखा तो उसे विश्व स्तर पर लाना कठिन हो जायेगा। अतः द्विवेदी जी एक ऐसी भाषा संरचना की बात करते हैं जो सरलतापूर्वक ग्राह्य हो। इसके लिये भाषा शास्त्रियों को अपना योग देना होगा। आचार्य द्विवेदी जी की उनसे ऐसी अपेक्षाएँ हैं– ''मुझे बहुत खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि हम हिन्दी वाले बिलकुल सोये हुए हैं। हमें ऐसे शब्दकोशो, मुहावराकोशों और शब्द–स्वसारों का निर्माण करना चाहिये था जिनके सहारे थोड़ी हिन्दी जानने वाले आसानी से अपने मन का शब्द खोज ले। हमें विभिन्न भाषाओं के माध्यम से हिन्दी शिखाने की दर्जनों पुस्तकें अब तक लिख देनी चाहिये थी।[8]

भारतवर्ष एक लोकतांत्रिक गणराज्य है। इसमें शासन जनता द्वारा, जनता के लिये होता है। जब जनता द्वारा शासन–व्यवस्था नियंत्रित होती है तो उसके लिये भाषा भी जनता की अपनी होनी चाहिये। आचार्य द्विवेदी जी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिये हिन्दी भाषा का समर्थन करते हैं। ''विभिन्न राज्यों में तो अपनी–अपनी भाषाएँ शासन व्यवस्था के लिये काम में लायी जायें, परन्तु सारे देश के लिये और राज्यों के पारस्परिक संबंधो के लिये हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाये। ऐसा करने से ही देश में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था कायम होगी।'' लेखक को सहज होने के साथ–साथ उसकी अपनी भाषा भी सहज होनी चाहिए। सहज भाषा द्वारा ही पाठक लेखक के आचार–विचारों से अपना तारतम्य बनाता है और उन्हें ह्रदयंगम करता है। यदि भाषा मे सहजता नहीं होगी तो पाठक कुंठित होकर उस साहित्य के प्रति उदासीन होकर बैठ जायेगा। आचार्य द्विवेदी भी सहज भाषा के अनुयायी है। ''निस्संदेह में सहज भाषा का पक्षपाती हहूँ।सामाजिक दुर्गति, यह भाषा जो मनुष्य को उसकी दरिद्रता, अधसस्कार और परमुखापेक्षिता से न बचा सके किसी काम की नहीं है. तपस्या, त्याग और आत्म– बलिदान के द्वारा सीखी हुई भाषा सहज भाषा है।''[9]

अन्ततः कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य में एक अपूर्व साहित्यकार हैं। इनकी शोधपरक दृष्टि में गवेषणात्मकता, विचारात्मकता, गहन अध्ययन, चिंतन–मनन एवं मंथन आदि का अद्भुत संगम है। इन सबके कारण वही उनका व्यक्तित्व अपने समकालीन साहित्यिकों से सर्वथा भिन्न है। आपने संस्कृत भाषा की एक ओर जहाँ प्रशंसा की है और हिन्दी की परिनिष्ठित, प्रांजल और विकसित करने के लिये संस्कृत शब्दावली को सम्मिलित करने का समर्थन किया है, वही दूसरी ओर आपने विदेशी भाषा अंग्रेजी को भी हिन्दी को भाँति राष्ट्रीय भाषा के रूप में महत्त्व दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–भाषा साहित्य और देश सं० मुकुन्द द्विवेदी भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूटशनल ऐरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1998, पृष्ठ 9,
2. वही पृष्ठ 13,
3. वही पृष्ठ 16,
4. वही पृष्ठ 43,
5. वही पृष्ठ 44,
6. सं० मुकुन्द द्विवेदी–हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण, 1981, पृष्ठ 211,
7. वही पृष्ठ 211,
8. वही पृष्ठ 215,
9. वही पृष्ठ 216,